इकाई 10 विधायिका

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 भारतीय विधायिका : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

10.3 संघीय विधायिका

10.3.1 राष्ट्रपति

10.3.2 संसद : लोक सभा

10.3.3 संसद : राज्य सभा

10.3.4 राज्य सभा की विशेष शक्तियाँ

10.4 पीठासीन अधिकारी

10.4.1 लोक सभा अध्यक्ष

10.4.2 राज्य सभा अध्यक्ष

10.5 विधायिक प्रक्रिया

10.5.1 वित्त विधेयक

10.6 संसदीय विशेषाधिकार

10.7 कार्यपालिका पर नियंत्रण हेतु संसदीय युक्तियाँ

10.7.1 संसदीय समितियाँ

10.8 राज्य विधायिका

10.9 विधायिका का पतन

10.10 सारांश

10.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

इस इकाई में भारतीय संसद के उद्‌भव, प्राधार तथा कार्यप्रणाली की जाँच-पड़ताल है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य होंगे कि –

- भारत में आधुनिक विधायिका का उद्‌भव तलाश सकें;
- संसद के संगठन तथा प्रकार्यों पर चर्चा कर सकें; और
- संसदीय प्रक्रियाओं को स्पष्ट कर सकें।

10.1 प्रस्तावना

'विधायिका' अंग्रेजी शब्द 'लैजिस्लेचर' का अनुवाद है जो लैटिन शब्द लैक्स (Lex) से निकला है, जिसका अर्थ है–मुख्यत: सामान्य अनुप्रयोगार्थ वैधानिक नियम का एक विशिष्ट प्रकार। इस नियम को विधान नाम दिया गया है, और वह संस्था जो जनता की ओर से इसे अधिनियमित करती है,

विधायिका कहलाती है। अनिवार्यतः, विधायी प्राधार के दो प्रतिरूप होते हैं : संसदीय तथा अध्यक्षीय। संसदीय प्रतिरूप में कार्यकारिणी उसके अपने सदस्यों में से ही विधायिका द्वारा चुनी जाती है। इसी कारण, कार्यकारिणी विधायिका के प्रति उत्तरदायी होती है। अध्यक्षीय प्रणाली सत्ता-पृथक्करण के सिद्धांत पर आधारित होती है और किसी भी व्यक्ति को एक ही समय कार्यकारिणी तथा विधायिका, दोनों में कार्य करने की अनुमति नहीं देती है।

भारतीय संसद, जो हमारे संविधान की रचना है, जनता का सर्वोच्च प्रतिनिधिक प्राधिकरण है। यही उच्चतम विधायी अंग है। यही जनमत की अभिव्यक्ति हेतु राष्ट्रीय मंच है।

10.2 भारतीय विधायिका : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतीय संसद रातोंरात नहीं प्रकट नहीं हुई; यह ब्रिटिश शासन के दौरान, विशेषकर 1858 से धीरे-धीरे तब उद्भूत हुई जब ब्रिटिश 'क्राउन' ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी से भारत पर प्रभुसत्ता ग्रहण कर ली। भारत सरकार अधिनियम, 1858 द्वारा 'क्राउन' की शक्तियों का प्रयोग एक कौन्सिल ऑव इण्डिया की मदद से भारत हेतु राज्य-सचिव द्वारा किया जाना था। यह राज्य-सचिव, जो ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के प्रति उत्तरदायी था, उच्च सरकारी पदाधिकारियों वाली एक एक्जीक्यूटिव कौन्सिल की मदद से, गवर्नर-जनरल के मार्फ़त भारत पर शासन करता था। किसी प्रकार का कोई शक्ति-पृथक्करण नहीं था; सभी शक्तियाँ – विधायी, कार्यकारी, सैन्य तथा असैनिक – कौन्सिल में इस गवर्नर-जनरल में निहित थीं।

इण्डियन कौन्सिल एक्ट, 1861 ने थोड़ा-बहुत लोकप्रियता का पुट देना आरम्भ दिया क्योंकि इसने एक्ज़ीक्यूटिव कौन्सिल में कुछ अतिरिक्त *ग़ैर-राजकर्मचारियों* को शामिल किया था और उनको विधायी व्यवसाय के लेन-देन में भाग देने की अनुमति दे दी थी। लैजिस्लेटिव कौन्सिल न तो मंत्रणात्मक थी और न ही प्रतिनिधिक। इसके सदस्य, नामांकित होते थे और उनकी भूमिका गवर्नर-जेनरल द्वारा रखे गए विधायी प्रस्तावों पर मात्र विचार करने तक सीमित थी।

इण्डियन कौन्सिल एक्ट, 1892 ने दो महत्त्वपूर्ण सुधार किए। प्रथम, इण्डियन लैजिस्लेटिव कौन्सिल के ग़ैर-पदेन सदस्य अब से बंगाल चैम्बर ऑव कॉमर्स तथा प्रोविन्सिअल लैजिस्लेटिव कौन्सिलों द्वारा नामांकित किए जाने थे, जबकि प्रोविन्सिअल कौन्सिलों के ग़ैर-पदेन सदस्य विश्वविद्यालयों, ज़िला बोर्डों, नगरपालिकाओं जैसे कुछ स्थानीय निकायों द्वारा नामांकित किए जाने थे। दूसरे, ये कौंसिलें बजट पर चर्चा करने तथा एक्जीक्यूटिव से शंका-समाधान कराने में सक्षम बना दी गईं।

मॉरले-मिण्टो सुधारों पर आधारित इण्डियन कौन्सिल एक्ट, 1909 ने पहली बार प्रतिनिधिक के साथ-साथ लोकप्रिय अभिलक्षणों को भी प्रवेश दिया। केन्द्र में, लैजिस्लेटिव कौन्सिल में निर्वाचन शुरू किया गया यद्यपि पदाधिकारियों ने बहुमत अभी तक कायम रखा था। परन्तु प्रान्तों में, प्रोविन्सिअल लैजिस्लेटिव कौन्सिल का आकार निर्वाचित ग़ैर-पदेन सदस्यों को शामिल कर बढ़ा दिया गया ताकि ये पदाधिकारीगण आइंदा बहुमत न बनाएँ। इस अधिनियम ने लैजिस्लेटिव कौन्सिलों के मंत्रणात्मक प्रकार्यों को बढ़ावा दिया और उन्हें बजट तथा जनहित के किसी भी अन्य ऐसे मामले पर दृढ़-प्रतिज्ञता प्रस्तुत करने का अवसर दिया जो कुछ विशिष्ट विषयों, जैसे कि सशस्त्र बल, विदेश मामले तथा भारत राज्य आदि, को छोड़कर हो। भारत सरकार अधिनियम, 1915 ने सभी पूर्व अधिनियमों को समेकित किया ताकि कार्यकारिणी, विधायिका तथा वैधानिक प्रकार्य किसी एक ही अधिनियम से व्युत्पन्न किए जा सकें।

भारत सरकार अधिनियम, 1919 से उद्गमित विधायी सुधारों का अगला चरण प्रान्तों में उत्तरदायी सरकार के रूप में कुछ और विधायी सुधार लेकर आया। केंद्र में विधायिका को द्विसदनी बना दिया गया और निर्वाचित बहुमत को दोनों सदनों में प्रविष्ट कराया गया। तथापि, उत्तरदायी सरकार का कोई भी घटक केन्द्र में प्रविष्ट नहीं किया गया। कौन्सिल में गवर्नर-जेनरल पहले की ही भाँति राज्य-सचिव के माध्यम से ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के प्रति उत्तरदायी बना रहा।

भारत सरकार अधिनियम, 1935 भारतीय राष्ट्रीय नेताओं और ब्रिटेन के बीच अनेक सन्धि-वार्ताओं के बाद अस्तित्व में आया। इसने ब्रिटिश भारतीय प्रांतों तथा देशज राज्यों वाले एक संघ की अपेक्षा की थी। इसने छह राज्यों में द्विसदनी विधायिकाओं को प्रारंभ किया। इसने तीन सूचियों – केन्द्रीय सूची, प्रान्तीय सूची और समवर्ती सूची, के माध्यम से केन्द्र व प्रान्तीय विधायी शक्ति को सीमांकित किया। बहरहाल, सैण्ट्रल एक्जीक्यूटिव को विधायिका के प्रति उत्तरदायी नहीं बनाया गया। गवर्नर-जेनरल के साथ-साथ 'क्राउन' भी सैण्ट्रल लैजिस्लेचर द्वारा पारित विधेयकों को अस्वीकार (वीटो) कर सकता था। गवर्नर-जेनरल के पास अध्यादेश-प्रारूपण अधिकारों के अलावा विधि-निर्माण अथवा स्थायी अधिनियमों के स्वतंत्र अधिकार भी थे। इस प्रकार की सीमाएँ प्रोविन्सिअल लैजिस्लेचरों के मामले में भी विद्यमान थीं।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक परिदृश्य तथा भारत व ब्रिटेन में हालातों ने ब्रिटिश सरकार को स्वतंत्रता हेतु भारतीय दावे के एक असम-मुखरित स्वीकरण की ओर प्रवृत्त किया। भारतीय स्वाधीनता अधिनियम, 1947 दो स्वतंत्र उपनिवेश – भारत और पाकिस्तान, बना कर पास किया गया। प्रत्येक स्वतंत्र उपनिवेश को पूरी विधि-निर्माण स्वायत्तता रखनी थी। 1946 में बनी कॅन्स्टीट्यूएण्ट असेम्बली द्वारा जो कुछ भी प्रतिबंध हो, स्वतंत्र उपनिवेश की विधायिका के अधिकार बिना किसी प्रतिबन्ध के व्यवहार्य थे। इस कॅन्स्टीट्यूएण्ट असेम्बली ने भारतीय संविधान अंगीकार कर लिया, जिस पर 26 नवम्बर 1950 को राष्ट्रपति के हस्ताक्षर हुए।

बोध प्रश्न 1

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिए गए आदर्श उत्तरों से करें।

1) भारत सरकार अधिनियम, 1919 के द्वारा शुरू किए गए महत्त्वपूर्ण वैधानिक सुधार हैं

.....

.....

.....

.....

2) केन्द्र तथा संघट्ट इकाई के बीच शक्ति-विभाजन पहली बार द्वारा शुरू किया गया।

.....

.....

.....

.....

10.3 संघीय विधायिका

अनुच्छेद 79 के प्रावधान के तहत्, भारत की संसद के मुख्य घटक हैं — राष्ट्रपति और दो सदन– निम्न सदन अथवा लोक सभा (जनता का सदन) तथा उच्च सदन अथवा राज्य सभा (राज्यों की परिषद्)। जबकि लोकसभा भंग किए जाने की विषयवस्तु है, राज्य सभा एक स्थायी विधि-निर्माण संस्था है जिसको भंग नहीं किया जा सकता है। राष्ट्रपति पद भी कभी रिक्त नहीं रहता है।

10.3.1 राष्ट्रपति

जबकि अमेरिका का राष्ट्रपति विधायिका (कॉंग्रेस) का अंग नहीं होता, भारत का राष्ट्रपति भारतीय संसद का एक अभिन्न अंग होता है। तथापि वह दोनों सदनों में से किसी में भी न तो बैठ सकता है और न मंत्रणाओं में भाग ही ले सकता है।

भारत का राष्ट्रपति संसद की तुलना में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। राष्ट्रपति सदन को एक सत्र से दूसरे सत्र तक उपस्थित होने के लिए आदेश जारी करता है और सत्रावसान करता है। दोनों सदनों द्वारा पास किया गया कोई भी विधेयक राष्ट्रपति की सहमति के बिना कानून नहीं बन सकता है। इसके अलावा कुछ विधेयक तभी लाए जा सकते हैं जब राष्ट्रपति की अनुशंसा प्राप्त हो जाए। जब दोनों ही सदनों की सत्रावसान स्थिति हो तो राष्ट्रपति को अध्यादेश जारी करने का अधिकार भी है। ये अध्यादेश यद्यपि स्वभावत: अस्थायी होते हैं, संसद द्वारा पास किए गए किसी कानून जैसा ही प्रभाव और शक्ति रखते हैं। इकाई 12 में हम भारत के राष्ट्रपति की शक्तियों का विस्तार से निरीक्षण करेंगे।

10.3.2 संसद : लोक सभा

निम्न सदन अथवा जनता के सदन को साधारणत: लोक सभा के रूप में जाना जाता है। इसके सदस्य जनता द्वारा सीधे चुने जाते हैं। चुने जाने वाले अधिकतम सदस्यों की संख्या जो संविधान द्वारा तय की गई थी, 500 थी। सातवें संविधान संशोधन (1956) द्वारा इसे बढ़ाकर 520 सदस्य और 42वें संविधान संशोधन (1976) बढ़ाकर 545 सदस्य कर दी गई। इसमें शामिल थे– अधिक-से-अधिक 525 ऐसे सदस्य जो राज्यों में क्षेत्रीय निर्वाचन-क्षेत्रों से सीधे चुनाव द्वारा चुने जाते थे, और अधिक-से-अधिक 20 ऐसे सदस्य जो केंद्रशासित प्रदेशों का प्रतिनिधित्व करते थे। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रपति आंग्ल-भारतीय समुदाय के दो सदस्यों को नामांकित कर सकता है यदि वह समझता है कि उस समुदाय का लोक सभा में समुचित प्रतिनिधित्व नहीं है।

राज्यों के बीच सीटों का वितरण क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व के सिद्धांत पर आधारित है जिसका अर्थ है प्रत्येक राज्य को सभी राज्यों की कुल जनसंख्या के अनुपात में उसकी आबादी के आधार पर सीटें आबंटित हैं। निर्वाचन के उद्देश्य से प्रत्येक राज्य निर्वाचन-क्षेत्र कही जाने वाली क्षेत्रीय इकाइयों में विभाजित है जो जनसंख्या के लिहाज से न्यूनाधिक एक ही आकार की होती है।

लोक सभा का चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर कराया जाता है; प्रत्येक वयस्क जो 18 वर्ष की आयु पार कर चुका है, वोट देने के योग्य है। वह प्रत्याशी जो सबसे अधिक संख्या में वोट सुनिश्चित कर लेता है, निर्वाचित हो जाता है। संविधान चुनाव कराने के लिए चुनाव आयोग के नाम से जाने जाने वाले एक स्वतंत्र संगठन की व्यवस्था देता है। निम्न सदन का आमतौर पर जीवन पाँच साल है, यद्यपि राष्ट्रपति द्वारा इसे पहले भी भंग किया जा सकता है।

लोक सभा का सदस्य बनने के लिए व्यक्ति एक भारतीय नागरिक होना चाहिए, वह 25 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो और वे सभी अन्य अर्हताएँ रखता हो जो संसद के एक कानून द्वारा निर्धारित हैं। लोक सभा हेतु निर्वाचन के लिए प्रयास करता एक प्रत्याशी भारत में किसी भी राज्य से किसी भी संसदीय निर्वाचन-क्षेत्र से चुनाव लड़ सकता है।

संविधान ने सदस्यता के लिए कुछ अनर्हताएँ भी रखी हैं। कोई भी व्यक्ति संसद के दोनों सदनों का सदस्य अथवा संसद व किसी राज्य विधानमंडल दोनों का सदस्य नहीं हो सकता है। प्रत्याशी अनेक सीटों से चुनाव लड़ सकता है, परंतु यदि वह एक से अधिक सीट पर निर्वाचित होता है तो उसको अपनी पसंद की एक सीट के अलावा बाकी सब छोड़ देनी पड़ती हैं। यदि कोई व्यक्ति राज्य विधानमंडल तथा संसद, दोनों का चुनाव जीतता है और यदि वह राज्य विधानमंडल से निर्धारित समयावधि में त्याग-पत्र नहीं देता है, वह संसद में अपनी सीट पर अधिकार खो देगा। वे जिन्हें संसद के किसी कानून द्वारा छूट है, को छोड़कर कोई भी व्यक्ति केंद्रीय अथवा राज्य सरकार के अंतर्गत लाभ का कोई पद नहीं रख सकता है, और वह किसी सक्षम न्यायालय द्वारा दीवालिया अथवा विक्षिप्त मस्तिष्क वाला घोषित न हो। कोई सदस्य तब भी अयोग्य करार दिया जाता है जब वह बिना पूर्वानुमति के सदन की सभाओं से 60 दिन की अवधि तक अनुपस्थित रहता है अथवा वह स्वेच्छापूर्वक किसी अन्य देश की नागरिकता गृहण कर लेता है अथवा वह किसी विदेशी राज्य के प्रति अनुषक्ति की किसी अभिस्वीकृति के अधीन है।

10.3.3 संसद : राज्य सभा

राज्य सभा अथवा राज्य परिषद् में अधिक-से-अधिक 250 सदस्य होते हैं जिनमें से 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा उन व्यक्तियों के बीच से नामांकित किए जाते हैं जो 'साहित्य, विज्ञान, कला, व समाज-सेवा में विशेष ज्ञान अथवा व्यावहारिक अनुभव' रखते हैं। शेष सदस्य एकल हस्तांतरणीय वोट के माध्यम से आनुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली के अनुसार राज्य विधानसभाओं के सदस्यों द्वारा चुने जाते हैं। इस प्रकार, लोक सभा से भिन्न, राज्य सभा परोक्ष निर्वाचन की विधि अपनाती है। इस चुनाव के उद्देश्य से प्रत्येक राज्य की सीटों की संख्या आबंटित की जाती है, मुख्यत: उनकी आबादी के आधार पर। राज्य सभा, इस प्रकार राज्यों अथवा संघ की इकाइयों के प्रतिनिधित्व द्वारा संघीय अभिलक्षण दर्शाता है। तथापि, वह सैकंड चैंबर, में राज्य प्रतिनिधित्व की समानता के अमरीकी सिद्धांत का अनुसरण नहीं करती है। जहाँ संयुक्त राज्य (अमेरिका) का प्रत्येक राज्य सेनिट में दो प्रतिनिधि भेजता है, भारत में राज्य सभा में राज्य-प्रतिनिधियों की संख्या एक (नागालैंड) से 34 (उत्तर प्रदेश) तक भिन्न-भिन्न है, जो राज्य-विशेष की जनसंख्या पर निर्भर होती है।

10.3.4 राज्य सभा की विशेष शक्तियाँ

राज्य सभा का उन मंत्रियों पर मुश्किल से ही कोई नियंत्रण होता है जो वैयक्तिक अथवा संयुक्त रूप से लोक सभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं। यद्यपि उसको उन सभी मामलों पर सूचना प्राप्त करने का पूरा अधिकार है जो अनन्य रूप से लोक सभा के अधिकार-क्षेत्र में आते हैं, उसको कोई अधिकार नहीं है जो कि मंत्रिपरिषद् में अविश्वास मत पारित करे। इसके अतिरिक्त, राज्य सभा का धन-विधेयकों के मामलों में कुछ अधिक बोलने का अधिकार नहीं है।

तथापि, संविधान राज्य सभा को कुछ विशेष अधिकार प्रदान करता है। राज्यों के अनन्य प्रतिनिधि के रूप में राज्य सभा के पास दो अनन्य शक्तियाँ हैं जो विशेष महत्त्व की हैं।

प्रथम, अनुच्छेद 249 के तहत्, राज्य सभा को यह घोषणा करने का अधिकार है कि, राष्ट्रीय हित में, संसद को राज्य सूची में उल्लिखित किसी विषय के संबंध में कानून बनाने चाहिए। यदि एक दो-तिहाई बहुमत से राज्य सभा इस आशय का एक प्रस्ताव पारित कर देती है, संघीय संसद एक वर्ष की अवधि के लिए पूरे भारत अथवा उसके किसी भाग के लिए कानून बना सकती है।

राज्य सभा की दूसरी अनन्य शक्ति अखिल भारतीय सेवाओं को संचालित करने के संबंध में है। यदि राज्य सभा उपस्थित तथा मतदान करते कम-से-कम दो-तिहाई सदस्यों द्वारा कोई प्रस्ताव पारित करती है, संसद को अधिकार है कि वह संघ और राज्यों को सर्वमान्य एक अथवा अधिक अखिल भारतीय सेवाओं के सृजन हेतु कानून बनाए।

इस प्रकार, ये विशेष प्रावधान राज्य सभा को भारतीय विधायिका का एक महत्त्वपूर्ण घटक बनाते हैं, न कि इँग्लैंड के हाउस ऑव लॉर्ड्स की भाँति एक अलंकारिक द्वितीय सभा-गृह। संविधान-निर्माताओं ने इसे मात्र किसी उतावले विधान पर नियंत्रण रखने के लिए ही नहीं रचा है, बल्कि एक महत्त्वपूर्ण प्रभावशाली सलाहकार की भूमिका अदा करने की भी इससे अपेक्षा की जाती है। इसका सुसंबद्ध संयोजन तथा स्थायी अभिलक्षण इसे सातत्य और स्थिरता प्रदान करते हैं। चूँकि इसके अनेक सदस्य "ज्येष्ठ राजनेता" होते हैं राज्य सभा आदरणीयता की अधिकारिणी है।

10.4 पीठासीन अधिकारी

संसद के प्रतीक सदन में उसके अपने पीठासीन अधिकारी होते हैं। लोक सभा में उसके मुख्य पीठासीन अधिकारी के रूप में एक अध्ययन और उसकी मदद के लिए एक उपाध्यक्ष होता है जो उसकी अनुपस्थिति में पीठासीन अधिकारी के रूप में कार्य निभाता है। राज्य सभा का पीठासीन अधिकारी भी एक अध्यक्ष होता है, जिसकी मदद एक उपाध्यक्ष करता है। वह भी अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उसके कर्तव्यों तथा प्रकार्यों का निर्वहन करता है। पूर्ववर्ती 'लोक सभा अध्यक्ष/ उपाध्यक्ष' और परवर्ती 'राज्य सभा अध्यक्ष/उपाध्यक्ष' कहलाते हैं।

10.4.1 लोक सभा अध्यक्ष

लोक सभा अध्यक्ष की स्थिति न्यूनाधिक इँग्लैंड के हाउस ऑव कॉमन्स के 'स्पीकर' की भाँति होती है। अध्यक्ष पद उच्च गरिमा और प्राधिकार का प्रतीक होता है। एक बार इस पद हेतु चुने जाने के बाद अध्यक्ष अपनी पार्टी से संबंध तोड़ लेता है और एक निष्पक्ष रीति से कार्यारंभ करता है। वह सदस्यों के अधिकारों तथा विशेषाधिकारों के अभिभावक के रूप में काम करता है।

सदन की कार्यवाही के एक व्यवस्थित और कुशल संचालन को सुनिश्चित करने के लिए अध्यक्ष को अनेक अधिकार प्रदान किए गए हैं। वह सदन की कार्यवाहियाँ संचालित करता है, सदन की व्यवस्था और मर्यादा को कायम रखता है और व्यवस्था-बिंदुओं को निर्धारित करता है, सदन के नियमों की व्याख्या करता है तथा लागू करता है। अध्यक्ष ही प्रमाणित करता है कि कोई विधेयक धन-विधेयक है अथवा नहीं और उसका निर्णय अंतिम होता है। अध्यक्ष ही अधिप्रमाणित करता है कि दूसरे सदन अथवा भारत के राष्ट्रपति को उसकी सहमति हेतु प्रस्तुत किए जाने से पूर्व उसका सदन विधेयक को पारित कर चुका है। सदन के नेता की सलाह से अध्यक्ष ही कार्यवाही का क्रम निर्धारित करता है। वह ही निर्धारित करता है प्रश्नों, प्रस्तावों तथा संकल्पों की ग्राह्यता। अध्यक्ष प्रथमदृष्टया वोट नहीं देगा, परंतु किसी बराबरी की स्थिति में वह अपने निर्णायक मत का प्रयोग कर सकता है।

किसी ठोस प्रस्ताव को छोड़कर, लोक सभा अध्यक्ष के आचरण पर सदन में चर्चा नहीं की जा सकती है। उसका वेतन और भत्ते भारतीय समेकित कोष से देय होते हैं ताकि पद का स्वतंत्र लक्षण कायम रहे।

अध्यक्ष पद का एक विशेष लक्षण है कि सदन भंग होने की स्थिति में भी अध्यक्ष अपना पद खाली नहीं करता है। नए सदन द्वारा एक अन्य अध्यक्ष चुने जाने तक वह अपने पद पर बना रहता है। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष सदन की अध्यक्षता करता है।

10.4.2 राज्य सभा अध्यक्ष

भारत का उप-राष्ट्रपति ही राज्य सभा का पदेन अध्यक्ष होता है, परंतु किसी भी कालावधि में जब उप-राष्ट्रपति राष्ट्रपति की भूमिका निभाता है अथवा राष्ट्रपति के प्रकार्यों को निष्पादित करता है, वह राज्य सभा के पीठासीन अधिकारी के रूप में कर्तव्यपालन नहीं करता। उप-राष्ट्रपति का चुनाव एक संयुक्त बैठक में एकत्र संसद के दोनों सदनों के सदस्यों द्वारा किया जाता है। यह एकल हस्तांतरणीय वोट के माध्यम से आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अनुसार होता है और इस प्रकार के चुनाव में मतदान गुप्त मत-पत्र द्वारा होता है। उप-राष्ट्रपति संसद के किसी भी सदन का अथवा किसी भी राज्य विधानसभा का सदस्य नहीं होता वह अपने पद पर उस तिथि से जिस पर वह पदासीन हुआ, पाँच वर्ष की अवधि के लिए बना रहता है अथवा जब तक वह अपने पद से त्याग-पत्र देता है अथवा राज्य सभा सदस्यों के बहुमत और लोक सभा की सहमति द्वारा पारित किसी प्रस्ताव द्वारा अपने पद से हटा दिया जाता है। राज्य सभा अध्यक्ष के प्रकार्य और कर्तव्य बिलकुल लोक सभा अध्यक्ष जैसे ही हैं।

बोध प्रश्न 2

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अंत में दिए गए आदर्श उत्तरों से करें।

1) भारतीय संसद के एक सदस्य के लिए अहर्ताएँ एवं अनहर्ताएँ क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) लोक सभा अध्यक्ष की शक्तियाँ लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

10.5 विधायिक प्रक्रिया

विधि-निर्माण ही विधायिका का प्राथमिक प्रकार्य है। चूँकि आधुनिक समाज स्वभावत: बहुत जटिल है, विधि-निर्माण भी एक जटिल प्रक्रिया हो गई है। भारतीय संविधान विधि-निर्माण प्रक्रिया के निम्नलिखित चरण सुझाता है :

विधि-निर्माण का प्रथम चरण है – एक विधेयक की पुरस्थापना जिसमें प्रस्तावित कानून अभिव्यक्त होता है और यह "प्रयोजनों तथा हेतुओं की अभ्युक्ति" के साथ होता है। विधेयक की पुरस्थापना को विधेयक का प्रथम पाठन भी कहा जाता है। विधेयक दो प्रकार के होते हैं : साधारण विधेयक तथा धन-विधेयक। धन अथवा वित्त विधेयक के अलावा कोई भी विधेयक संसद के किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है और राष्ट्रपति की सहमति हेतु प्रस्तुत किए जाने से पूर्व इसे दोनों सदनों में पारित किए जाने की आवश्यकता होती है। कोई विधेयक एक मंत्री अथवा किसी गैरसरकारी सदस्य द्वारा पेश किया जा सकता है। सदन में प्रस्तुत किया जाने वाला प्रत्येक विधेयक राजपत्र में प्रकाशित करवाना पड़ता है। सामान्यत: एक विधेयक को प्रस्तुत किए जाते समय कोई बहस नहीं होती। विधेयक प्रस्तुत करने वाला सदस्य विधेयक के उद्देश्य व प्रयोजनों को इंगित करता हुआ एक संक्षिप्त विवरण दे सकता है। यदि विधेयक का इस चरण में विरोध होता है, विधेयक का विरोध करने वाले सदस्यों में से एक को अपने तर्क देने के लिए अनुमति दी जा सकती है। इसके बाद प्रश्न मत व्यक्त करने हेतु रखा जाता है। यदि सदन विधेयक की पुरस्थापना के पक्ष में है, तब यह अगले चरण में जाता है।

दूसरे चरण में, चार वैकल्पिक प्रक्रियाएँ होती हैं। अपनी पुरस्थापना के बाद, एक विधेयक (क) विचारार्थ लिया जा सकता है; (ख) सदन की एक प्रवर समिति के पास भेजा जा सकता है; (ग) दोनों सदनों की एक संयुक्त समिति के पास भेजा जा सकता है; (घ) जनमत माँगने हेतु घुमाया जा सकता है। जबकि पहले तीन विकल्प नियमित विधि-निर्माण के मामले में सामान्यत: अपनाए जाते हैं, अंतिम विकल्प की सहायता केवल तब ली जाती है जब प्रस्तावित विधान जनविवाद और उत्तेजना-प्रवण हो।

जिस दिन इन प्रस्तावों में से कोई कार्यान्वित किया जाता है, विधेयक के सिद्धांत और उसके सामान्य प्रावधानों पर चर्चा की जा सकती है। यदि विधेयक विचारार्थ लिया जाता है, विधेयक में संशोधन ओर विधेयक के प्रावधानों की एक-एक धारा दृढ़ता से कही जाती है। यदि विधेयक सदन की प्रवर समिति को भेजा जाता है, वह विधयेक पर विचार करता है और अपनी रिपोर्ट सदन को विचारार्थ पेश करता है। तब विधेयक की धाराएँ विचार किए जाने के लिए सार्वजनिक हो जाती हैं और संशोधन स्वीकार्य होते हैं। यही सर्वाधिक समय-व्ययी चरण है। एक बार धारा-दर-धारा विचार कार्य पूरा हो जाने और प्रत्येक धारा पर मत व्यक्त हो जाने के बाद विधेयक का दूसरा पाठन समाप्त हो जाता है।

तीसरे चरण में, प्रभारी सदस्य "पारित किए जाने वाले विधेयक" का प्रस्ताव रखता है। तीसरे पाठन पर विधेयक की प्रगति तीव्र होती है क्योंकि सामान्यत: केवल मौखिक अथवा नितांत औपचारिक संशोधन ही प्रस्तावित होते हैं और बहुत ही संक्षिप्त चर्चा होती है। एक बार संशोधनों का निपटारा होने के बाद, विधेयक अंतत: सदन में पारित हो जाता है। तदोपरांत, यह दूसरे सदन को उसके विचारार्थ प्रेषित कर दिया जाता है।

जब विधेयक दूसरे सदन के विचारार्थ आता है, उसको उन्हीं सभी चरणों से गुजरना पड़ता है जो आरंभिक सदन में थे। सदन के सामने तीन विकल्प होते हैं : (क) वह आरंभिक सदन द्वारा भेजे गए विधेयक को अंतिम रूप से वैसे ही पारित कर सकता है; (ख) यह विधेयक को पूर्ण निरस्त कर

सकता है अथवा आरंभिक सदन को वापस भेज सकता है; (ग) वह विधेयक पर कोई कार्रवाई नहीं भी कर सकता है और यदि विधेयक प्राप्ति-तिथि के बाद छः माह से अधिक पड़ा रहे, यह निरस्त माना जाता है।

आरंभिक सदन अब संशोधनों के आलोक में लौटाए गए विधेयक पर विचार करता है। यदि वह संशोधनों को मान लेता है, इस आशय का एक संदेश दूसरे सदन को भेजता है। यदि वह इन संशोधनों को स्वीकार नहीं करता है, तब विधेयक दूसरे सदन को इस आशय के एक संदेश के साथ लौटा दिया जाता है। ऐसी स्थिति में जब दोनों सदनों में कोई सहमति नहीं बनती, राष्ट्रपति दोनों सदनों की एक संयुक्त बैठक बुलाता है। उपस्थित एवं मतदान करते सदस्यों के एक साधारण बहुमत द्वारा यह विवादित प्रावधान अंतिम रूप से अंगीकार अथवा निरस्त कर दिया जाता है।

वह विधेयक जो अंतिम रूप से दोनों सदनों द्वारा पारित है, लोक सभा अध्यक्ष के हस्ताक्षर के साथ राष्ट्रपति को उसकी सहमति के लिए प्रस्तुत किया जाता है। यह सामान्यतः अंतिम चरण होता है। अगर राष्ट्रपति अपनी सहमति दे देता है, विधेयक अधिनियम बन जाता है और विधान-पुस्तिका में लिख दिया जाता है। यदि राष्ट्रपति अपनी सहमति नहीं देता है, विधेयक समाप्त हो जाता है। राष्ट्रपति इस पर फिर से विचार किए जाने के एक संदेश के साथ विधेयक सदनों में पुनर्विचार हेतु वापस भी कर सकता है। यदि फिर भी सदन विधेयक को संशोधन अथवा बिना संशोधन पारित कर देते हैं और विधेयक राष्ट्रपति को उसकी स्वीकृति हेतु दूसरी बार प्रस्तुत कर दिया जाता है, राष्ट्रपति को अपनी सहमति रोकने का कोई अधिकार नहीं है।

इस प्रकार, विधि-निर्माण एक लंबी, दुर्वह और समय-व्ययी प्रक्रिया है; एक थोड़े-से समय में कोई विधेयक पारित करना कठिन हो जाता है। विधेयक का समुचित प्रारूपण समय बचाता है और कुशलतापूर्वक विपक्ष का समर्थन माँगने के काम को आसान बनाता है।

10.5.1 वित्त विधेयक

किसी भी उस विधेयक को वित्त-विधेयक कहा जा सकता है जो राजस्व तथा व्यय से संबंधित हो। परंतु वित्त-विधेयक कोई धन-विधेयक नहीं होता है। अनुच्छेद 110 के अनुसार कोई भी विधेयक एक धन-विधेयक नहीं है जब तक वह लोकसभा अध्यक्ष द्वारा प्रमाणित न हो। एक धन-विधेयक को राज्य सभा में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है। एक बार लोक सभा द्वारा पारित कर दिए जाने के बाद धन-विधेयक राज्य सभा को प्रेषित कर दिया जाता है। राज्य सभा किसी धन-विधेयक को निरस्त नहीं कर सकती है। इसको हर हाल में विधेयक की प्राप्ति-तिथि से चौदह दिनों की अवधि के भीतर, विधेयक को लोक सभा को लौटा देना होता है जो उसके बाद सभा अथवा किसी भी सिफ़ारिश को स्वीकार अथवा निरस्त कर सकता है। यदि लोक सभा किसी भी सिफ़ारिश को स्वीकार कर लेती है, धन-विधेयक को दोनों सदनों द्वारा पारित हुआ मान लिया जाता है। यदि लोक सभा किसी भी सिफ़ारिश को नहीं मानती है, धन-विधेयक को बिना किसी संशोधन के दोनों सदनों द्वारा पारित हुआ मान लिया जाता है। यदि लोक सभा द्वारा पारित और राज्य सभा को उसकी सिफ़ारिशों हेतु कोई धन-विधेयक चौदह दिनों भीतर उसको वापस नहीं किया जाता है, इसे मूल रूप में बताई गई अवधि की समाप्ति पर दोनों द्वारा पारित हुआ मान लिया जाता है।

10.6 संसदीय विशेषाधिकार

संसद-सदस्यों की स्वतंत्र और कुशल कार्यात्मकता हेतु यह आवश्यक है कि उनको कुछ विशेषाधिकार दिए जाएँ। संसद-सदस्यों के लिए दो प्रकार के विशेषाधिकार होते हैं : परिगणित और अगणित।

परिगणित श्रेणी के अंतर्गत आने वाले मुख्य विशेषाधिकार जो एक सदस्य को प्राप्त हैं, वे हैं : (क) संसद के प्रत्येक सदन में बोलने की स्वतंत्रता; (ख) कुछ भी कथित अथवा मत व्यक्त किए गए के संबंध में किसी भी न्यायालय में कार्रवाई से प्रतिरक्षण; (ग) किसी भी रिपोर्ट, कागज़ात, वोटों अथवा कार्यवाहियों की संसद के किसी भी सदन द्वारा अथवा उसके अधिकाराधीन प्रकाशन के संबंध में उत्तरदायित्व से प्रतिरक्षण; (घ) सत्र के पूर्व और पश्चात् 40 दिन की अवधि के दौरान असैनिक मामलों में गिरफ्तारी से मुक्ति; और (ङ) किसी न्यायालय में एक गवाह के रूप में उपस्थित होने से छूट।

अगणित श्रेणी में उसी प्रकार के विशेषाधिकार तथा प्रतिरक्षण आते हैं जो ब्रिटिश पार्लियामेंट के हाउस ऑव कॉमन्स के सदस्यों को प्रदत्त हैं। हाउस ऑव कॉमन्स की ही भाँति, संसद की अवमानना के मामले में भारतीय संसद को किसी व्यक्ति को दंड देने का अधिकार है, चाहे वह सदस्य हो अथवा गैर-सदस्य।

10.7 कार्यपालिका पर नियंत्रण हेतु संसदीय युक्तियाँ

हमने देखा, संसद के महत्त्वपूर्ण कार्यों में से एक है – कार्यकारिणी को नियंत्रित करना। इस उद्देश्य से इसके लिए अनेक क्रिया-विधियाँ हैं।

संसद में कार्यवाही प्रक्रिया और प्रबंध के नियम व्यवस्था देते हैं कि जब तक पीठासीन अधिकारी अन्यथा निर्देश न दें, प्रत्येक बैठक प्रश्न-काल से आरंभ हो, जो कि प्रश्न पूछे जाने व उत्तर दिए जाने हेतु सुलभ है। प्रश्न पूछना सभी सदस्यों का एक अंतर्निहित संसदीय अधिकार है, वे चाहे किसी भी पार्टी से संबद्ध हों। प्रश्न पूछने में सदस्य का वास्तविक उद्देश्य होता है – प्रशासन की कमियों को उजागर करना, नीति-निर्धारण में सरकार के विचारों को सुनिश्चित करना और जहाँ नीति पहले से ही अस्तित्व में है, उस नीति में समुचित परिवर्तन करना।

ऐसी स्थिति में जब किसी प्रश्न का उत्तर प्रश्नकर्ता सदस्य को संतुष्ट नहीं करता और यदि वह महसूस करता है कि 'जनहित में विस्तृत व्यवस्था' की आवश्यकता है, वह पीठासीन अधिकारी से एक चर्चा हेतु निवेदन कर सकता है। पीठासीन अधिकारी सामान्यत: बैठक के अंतिम आधे घंटे में चर्चा की इजाज़त दे सकता हैं।

सदस्यगण, पीठासीन अधिकारी की पूर्वानुमति से, सार्वजनिक महत्त्व के किसी भी मसले पर किसी मंत्री का ध्यान आकृष्ट कर सकते हैं और उस मंत्री से उस विषय पर वक्तव्य देने का आग्रह कर सकते हैं। मंत्री या तो उसी वक्त एक संक्षिप्त वक्तव्य दे सकता है अथवा एक-आध घंटे बाद अथवा अगले दिन वक्तव्य देने का समय माँग सकता है।

मंत्रिगण सरकार को कार्यस्थगन प्रस्ताव की शरण लेने से उत्पन्न गंभीर परिणाम वाली चूक अथवा आचरण के किसी हाल में निर्णय के लिए फटकार लगा सकते हैं। इस प्रस्ताव का अभिप्राय किसी ऐसे मसले पर सदन का ध्यान खींचना होता है जिसके देश के लिए गंभीर परिणाम हो सकते हैं और जिसके संबंध में कोई समुचित अधिसूचनागत प्रस्ताव अथवा संकल्प बहुत विलंबित कदम होगा। कार्यस्थगन प्रस्ताव एक असाधारण प्रक्रिया है जो यदि स्वीकृत हो जाए तो सार्वजनिक महत्त्व के एक निश्चित मसले पर चर्चा हेतु सदन की सामान्य कार्यवाही को एक तरफ रख देना होता है। किसी कार्यस्थगन प्रस्ताव का स्वीकरण सरकार के अभिवेचन के बराबर है।

इन युक्तियों के अतिरिक्त, संसद विभिन्न सदन समितियों के माध्यम से कार्यकारिणी पर नियंत्रण शक्ति का प्रयोग करती है।

10.7.1 संसदीय समितियाँ

कार्यकारिणी की संसद के प्रति उत्तरदेयता और कार्यकारी प्रकार्यों की कार्य-विधि के पर्यवेक्षण तथा संवीक्षण के संसद के अधिकार को स्वयंसिद्ध के रूप में स्वीकार किया जाता है। परंतु व्यवहार में कुछ अपरिहार्य कारकों, जैसे कि संसद पर दवाब और उसकी व्यवहार्य प्रक्रियाओं की वजह से एक निकाय के रूप में संसद के लिए यह मुश्किल होता है कि वह दिन-प्रति-दिन प्रशासन तथा उसके वित्तीय लेन-देनों की संवीक्षा के बहुआयामी तथा जटिल ब्यौरों का कार्यभार अपने ऊपर ले। संसद ने यह समस्या सरकार के विभिन्न विभागों के कामकाज की संवीक्षा के आवश्यक अधिकार रखने वाली समितियों की एक शृंखला स्थापित करके हल की है।

सरकार के कार्यों, विशेषकर सार्वजनिक वित्तादि के क्षेत्र में, संवीक्षा करने वाली मुख्य समितियों में दो समितियाँ उल्लेखनीय हैं : सार्वजनिक लेखा समिति और आकलन समिति। इन व अन्य समितियों से अपेक्षा की जाती है कि वे कार्यकारिणी को अपने शिकंजे में रखें। वे इन सभी प्रस्तावित नीतियों की एक प्रभावी तथा विशद परीक्षा सुनिश्चित करती हैं। बहुधा, ये समितियाँ जनप्रचार की कोप-दृष्टि से दूर, एक पक्षनिरपेक्ष रीति से विवादास्पद तथा संवेदनशील मामलों पर चर्चा करने के लिए एक आदर्श संदर्भ प्रस्तुत करती हैं। वे उस अनुभव तथा योग्यता के सदुपयोग हेतु एक उपयोगी मंच प्रस्तुत करती हैं जो अन्यथा अप्रयोज्य ही रहें। वे भावी मंत्रियों तथा पीठासीन अधिकारियों हेतु एक बहुमूल्य प्रशिक्षण आधार तैयार करती हैं।

10.8 राज्य विधायिका

कई लिहाज से राज्य विधायिकाएँ भारतीय संसद की भाँति ही होती हैं। तथापि, एक सदनीयता अथवा द्विसदनीयता की पसंद राज्यों पर छोड़ दी गई थी, इस बात निर्भर करते हुए कि सभा-गृह को चलाने में आने वाली लागत की तुलना में वे किस प्रकार उसके प्रकार्यों को आंकते हैं। किंचित मात्र राज्यों ने ही विधान सभा (लैज़िस्लेटिव असेंबली) और विधान परिषद् (लैज़िस्लेटिव कौन्सिल) वाली द्विसदनी विधायिका का विकल्प चुना है।

प्रत्येक राज्य की विधान सभा में प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्रों से वयस्क मताधिकार के आधार पर सीधे मतदान द्वारा चुने गए सदस्य होते हैं। सभा का आकार कम-से-कम 40 और अधिक-से-अधिक 500 संख्या के बीच भिन्न-भिन्न होता है। विधान सभा का कार्यकाल पाँच वर्ष होता है।

विधान परिषद् की सदस्यता 40 से कम नहीं परंतु सभा की कुल सदस्यता के एक-तिहाई से अधिक नहीं होगी। सदन में अंशत: निर्वाचित तथा अंशत: नामांकित सदस्य होते हैं। सामान्यत: कुल सदस्यों के 1/6 राज्यपाल द्वारा नामांकित होते हैं और शेष स्नातकों, शिक्षकों तथा सभा-सदस्यों वाले पेचीदा फार्मूले पर परोक्ष रूप से चुने जाते हैं।

परिषद् की स्थिति सभा से निम्नतर होती है – इतनी निम्न कि इसको अनावश्यकप्राय ही समझा जाता है। (क) विधान परिषद् की नितांत प्रकृति ही इसकी स्थिति को कमजोर बनाती है; यह अंशत: निर्वाचित होती है और अंशत: नामांकित, और विभिन्न हितों का प्रतिनिधित्व करती है। (ख) इसका जीवनकाल सभा की इच्छा पर ही निर्भर होता है, क्योंकि सभा को एक प्रस्ताव पारित कर द्वितीय सभा-गृह को समाप्त करने का अधिकार है। (ग) मंत्रिपरिषद् केवल सभा के प्रति उत्तरदायी होती है और परिषद् के प्रति नहीं। (घ) सभा में उठने वाले किसी साधारण विधेयक के संबंध में, परिषद् की स्थिति बहुत कमजोर है क्योंकि वह इस पर स्वीकृति एक सीमित समय तक ही स्थगित कर सकती है। इस प्रकार राज्य विधायिका का द्वितीय सभा-गृह कोई सुधारकारी निकाय नहीं, बल्कि मात्र एक विलंबकारी निकाय है।

एक महत्त्वपूर्ण अपवाद के साथ, राज्य विधानसभा में विधायी प्रक्रिया संसद की ही भाँति होती है। राज्यपाल राष्ट्रपति के विचारार्थ राज्य विधायिका द्वारा पारित किसी भी विधेयक को रोक रख सकता है। विशेषत: एक मामले में विधेयक को रोक रखना राज्यपाल के लिए बाध्यकर है, यथा जब विधेयक उच्च न्यायालय की शक्तियों के प्रति अनादरपूर्ण हो। यदि राष्ट्रपति राज्यपाल को पुनर्विचार हेतु विधेयक वापस भेजने का निर्देश देता है, विधायिका को छ: माह के भीतर विधेयक पर पुनर्विचार करना होता है और यदि यह फिर पारित हो जाता है, विधेयक राष्ट्रपति को पुन: प्रस्तुत किया जाता है। परंतु राष्ट्रपति के लिए यह बाध्यकर नहीं है कि वह अपनी स्वीकृति दे ही। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि एक बार राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति के लिए कोई विधेयक रोक रखने के बाद राज्यपाल की उसमें कोई भूमिका नहीं होती है। चूँकि संविधान राष्ट्रपति हेतु कोई समय-सीमा निर्धारित नहीं करता है कि वह अपनी सहमति घोषित करे अथवा रोके रखे, राष्ट्रपति अपने इरादे को व्यक्त किए बग़ैर एक अनिश्चित काल तक विधेयक को ठंडे बस्ते में डाले रख सकता है।

10.9 विधायिका का पतन

वर्तमान में, विधायिका और पालिका के अनुकूल शक्तिवर्धन में ह्रास को इंगित करती एक सशक्त प्रवृत्ति विद्यमान है। संसद की प्रतिष्ठा और प्रकार्यात्मकता के इस ह्रास में अनेक कारकों का योगदान है।

संसद निस्संदेह विधायी उपायों के ब्यौरों में अपना पूरा समय नहीं लगा सकती है। यह अधिक-से-अधिक विस्तृत नीति निर्धारित कर सकती है और शेष को कार्यकारिणी द्वारा हाथ में लिए जाने हेतु छोड़ सकती है। इस प्रकार, सभी विधेयकों में आवश्यक विनियम तथा उप-नियम रचने हेतु सरकार को अधिकार देता एक अनुच्छेद होता है। इस प्रकार, प्रतिनियुक्त विधायिका संसद के अधिकार काफी हद तक छीन लेती है, परिणाम होता है संसद की प्रतिष्ठा का पतन।

भारत में सर्वदा-परिवर्तनशील राजनीतिक तथा नैतिक परिस्थितियाँ भी संसद के प्रतिष्ठा पतन हेतु जिम्मेदार हैं। पार्टी प्राबल्य, पार्टी संगठन का अभाव, राजनीतिक दल-बदल की घबराहट, भ्रष्टाचार तथा राजनीतिज्ञों का गिरता मनोबल सभी ने संसद की प्रतिष्ठा के अपक्षय में योगदान किया है। भारत में संसद के सामने एक बड़ा खतरा सभी राजनीतिक दलों में विविध तथा विभाजक बलों की बढ़वार द्वारा खड़ा किया गया है। सत्तारूढ़ व विपक्षी दल, दोनों विचारधारा की बजाय विचार के औचित्य और राजनीतिक प्रयोजन द्वारा अधिक प्रेरित होते हैं। विपक्ष की प्रभावहीनता और एक सशक्त सुस्पष्ट जनमत के अभाव ने प्रधानमंत्री के नेतृत्व वाली कार्यकारिणी की तुलना में संसद की स्थिति को अधिक कमज़ोर किया है। सिद्धांतत: हमारे यहाँ संसदीय प्रणाली है जहाँ कार्यप्रणाली को विधायिका द्वारा नियंत्रित किया जाता है, परंतु वास्तव में, विधायिका के अधिकार कार्यकारिणी के हाथों में आ गए हैं।

बोध प्रश्न 2

नोट :i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिए गए आदर्श उत्तरों से करें।

1) 'प्रश्न-काल' क्या होता है?

.....

.....

.....

2) 'स्थगन प्रस्ताव' का महत्त्व बताएँ।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

10.10 सारांश

भारतीय संसद, देश में सर्वोच्च विधायी अंग, की एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है। ईस्ट इण्डिया के दिनों में, जबकि विधायिका किसी रूप में अस्तित्व में आ गई, तभी कम्पनी के शासन के स्थान पर 'क्राउन' का शासन हो गया और यूनियन लैजिस्लेटिव की शक्तियों के साथ-साथ इसका लोकतांत्रिक आधार भी धीरे-धीरे बढ़ने लगा।

संसद में होते हैं – राष्ट्रपति, लोक सभा तथा राज्य सभा। संसद हेतु चुने जाने के लिए संविधान व संसद द्वारा निर्धारित कुछ अर्हताएँ पूरी करनी होती हैं। संसद-सदस्यों को बेहतर प्रकार्यात्मक हेतु कुछ विशेषाधिकार प्राप्त हैं। सदन की सभाओं का संचालन करने और सदन की प्रतिष्ठा और मान की रक्षार्थ प्रत्येक सदन का अपना एक पीठासीन अधिकारी होता है।

संसद का प्राथमिक कार्य है कानून बनाना। इसके अतिरिक्त, यह अपनीं नीतियों के लिए मंत्रिपरिषद् को उत्तरदायी ठहराती है और जहाँ कहीं भी आवश्यक हों, नीतियों की आलोचना करती है। इसके पास संविधान संशोधित करने और राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाने की शक्तियों हैं। प्रभावी प्रकार्यात्मकता भी हेतु इसके सदस्यों के बीच से अनेक समितियाँ नियुक्त की जाती हैं। सरकार पर नियंत्रण रखने के लिए प्रश्न-काल, स्थगन प्रस्ताव, ध्यानाकर्षण प्रस्ताव, आदि संसद को उपलब्ध हैं। बजट पारित करना, संसद का एक महत्त्वपूर्ण प्रकार्य, उसे सरकार की गतिविधियों की सूक्ष्म जाँच करने का अवसर प्रदान करता है।

सम्पूर्ण विश्व में विधायिका की स्थिति में एक अधोमुखी प्रवृत्ति व्याप्त है। प्रतिनियुक्त विधान, सरकार के अन्य अंगों पर कार्यकारिणी का आधिपत्य, सशक्त दल प्रणाली का उदय, आदि इस प्रवृत्ति हेतु कुछ कारण हैं। इन प्रवृत्तियों के बावजूद, संसद अब भी शासन की अधिकारिणी है और सरकार के अन्य अंगों की तुलना में अपनी स्थिति बरकरार रखने में सक्षम है।

10.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

ग्रैनविले, ऑस्टिन, *इण्डिया'ज़ कॅन्स्टीट्यूशन – कॉर्नरस्टोन ऑव ए नेशन*, आक्सफॉर्ड यूनीवर्सिटी प्रैस, 1964।

बसु, दुर्गा दास, *कमेण्ट्री ऑन दि कॅन्स्टीट्यूशन ऑव इण्डिया*, प्रेण्टिस हॉल, नई दिल्ली, 1983।

मुखर्जी, हिरेन, *पोर्ट्रेट ऑव पार्लियामेण्ट : रिफ़्लेक्शन्स एण्ड रीकलेक्शन्स*, विकास, नई दिल्ली, 1978।

10.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) केन्द्र में द्विसदन विधायिका – पहली बार, निर्वाचित बहुमत विधायिका में स्थापित किया गया।

2) भारत सरकार अधिनियम, 1935 जिसने भारत में संघवाद की पुरस्थापना की।

बोध प्रश्न 2

1) सदस्य बनने के लिए, व्यक्ति 25 वर्ष (लोक सभा के लिए) अथवा 30 वर्ष (राज्यसभा के लिए) का हो तथा संसद द्वारा निर्धारित अन्य अर्हताएँ रखता हो। यदि कोई सदस्य 60 दिन से अधिक बिना अनुमति सभाओं से अनुपस्थित रहे, यदि वह भारत सरकार के तहत कोई लाभ का पद ग्रहण किए हो, यदि वह अस्वस्थ मस्तिष्क वाला है, यदि दिवालिया घोषित है अथवा किसी अन्य देश का नागरिकता ग्रहण कर लेता है अथवा किसी विदेशी राज्य के प्रति निष्ठा रखने की स्वीकृतिअधीन है, वह अयोग्य घोषित हो जाता है। राज्य विधानसभा हेतु चुना गया सदस्य, यदि वह एक निर्दिष्ट अवधि के भीतर राज्य विधानसभा से त्याग-पत्र नहीं देता है, संसद से अपनी सदस्यता खो देता है।

2) उसके पास व्यापक और विस्तीर्ण शक्तियाँ हैं – लोकसभा की बैठक की अध्यक्षता करना, कानूनी कार्यवाहियाँ संचालित करना, सदन में व्यवस्था बनाए रखना और सदन में कार्यवाहियों का क्रम निर्धारित करना – सदन के प्रवक्ता के रूप में काम करना – सदन के नियमों की व्याख्या करना और लागू करना – विधेयकों को अधिप्रमाणित करना – धन-विधेयक को प्रमाणित करना – आदि।

बोध प्रश्न 3

1) किसी सदन की बैठक का पहला घण्टा जो प्रश्नों के पूछे जाने और उत्तर दिए जाने हेतु उपलब्ध होता है।

2) यह बेहद महत्त्वपूर्ण और पूरे देश को प्रभावित करके किसी मसले की ओर सदन का ध्यान आकृष्ट करने की असाधारण क्रिया-प्रणाली है। इस प्रस्ताव पर चर्चा करने के लिए सामान्य कार्यवाही एक तरफ़ रखी जाती है। और इस प्रस्ताव का स्वीकरण सरकार की निन्दा के बराबर होता है।